आदर्श नारी

नारी का जीवन समर्पित जीवन है। उसकी कुमारावस्था पिता के अधीन, युवावस्था पति के अधीन और वृद्धावस्था पुत्रों के अधीन रहती है। वह अनाम होकर सुनाम होती है अर्थात जब वह अपने पिता, पुत्र, पति आदि कुटुम्ब की सेवा में अहोरात्र लगी रहती है उसी लग्न से उसकी सत्कीर्ति विश्रुत होती है। नारी का शील सेवा चारित्र है।

आदर्शों की स्थापना, त्याग, तप, शील शील, संयम, शील शौच, आदि अनेक उत्तम गुणों से होती है। प्रासाद को ऊँचा उठाने के लिए जैसे सहस्रों ईंट, खम्भे, भित्तियां आवश्क है वैसे आदर्श प्राप्ति में श्रेष्ट गुणों का पालन अनिवार्य है। जैसे कज्जल की रेखा भी उज्जवलता पर कलंक (धब्बा) हो जाती है वैसे ही आदर्शों को प्रमाद की स्थिति विकृत कर देती हैा नारी का जीवन अप्रमत्तता का साक्षात् उदाहरण हैा कालिदास ने शकुन्तला ने कण्व के द्वारा उपदेश कराते हुए कहा है - **शुश्रस्व गुरून** (अपने से बड़ों की सेवा करना)। भगवती सीता के लिए वाल्मीकि लिखते है - **नारीणामुत्तमा वधुः** (सीता स्त्रियों में उत्तम है)। सदगृहस्थ स्त्रियां घर में सबसे प्रथम उठती है और सबके पश्चात शयन करती है। स्त्रियो का रूप उनका शील है उनका गुण परिवार की सेवा है।

नारी का सुख सबके लिए है। वह अपने सुख को परिवार के प्रत्येक छोटे - बडे सदस्यों में बाटकर अधिक तृप्त होती है परन्तु कष्ट अथवा दुःख को स्वयं ही उठाना चाहती है। उन्हे अबला कौन कह सकता है।

भगवान महावीर का संदेश

जिस दिवस दिव्यध्वनि खिरी, प्रथम वह साधना कृष्णा थी पावन।
तिथि महावीर के शासन की, प्रतिपदा मांगलिक मन भावन।।
विपुलता से दिया गया, जो प्रथम देशना का सन्देश।
गौतम गणधर ने गूंथा है, उसको ही सामान्य विशेष।।
वीतरागता परम अहिंसा, स्याद्वाद सर्वोदय ही।

कर्मवाद निःसंगवाद है, द्वादशांग वाणी मय ही।।
पर द्रव्यों से भिन्न सर्वथा, ज्ञान ज्योति हर चेतन है।
स्वाभिकता वीतरागता वैभाविकता बन्धन है।।
जीने का अधिकार सभी को, स्वयं जियो और जीने दो।
शेर गाय को एक घाट पर, करूणा-जल पीने भी दो।।
आत्मा को प्रतिकुल लगे जो, औरों को भी वह प्रतिकुल।
नहीं चुभओं अतः किसी को, कभी दुःख हिंसा के शूल।।
अपने वीतराग चेतन में,राग-द्वेष का प्रादुर्भाव।
खुद की हिंसा करने वाला, कहलाता है हिंसक भाव।।
उसी भाव हिंसा के द्वारा, औंरों की हिंसा करना।
संकल्पी उद्यमी विरोधी, आरम्भी हिंसा कहना।।
है अनन्त गुण सत्ता वाला, जड़ चेतन प्रत्येक पदार्थ।
हर पहलू से उसे देखना ही, है सम्यग्दृष्टि यथार्थ।।

माँ

तुझे पाने के लिए मां सभी मंदिरों में गई,
अब तुझे खोने के गम में मंदिर ना जाना पडे।
तुझे पाने के लिए मां बाप ने पेडे बांटे,
वही बेटे बडे होकर मां-बाप को बाटे तो कैसे चलेगा।
बचपन में जिसने तुझको पाला, बूढ़ेपन में उसको,
तूने नहीं सम्भाला तो याद रखना, तुझको नहीं मिलेगा सहारा।
चार वर्ष का तेरा लाडला जो तेरे प्रेम की आस रखे,
तो 55 वर्ष की मां तेरे प्रेम की आस क्यों नहीं रखे।
घर की मां रुलाए और मंदिर की मां को चढाए,
तो याद रखना मंदिर की मां तुझ पर, खुश नहीं होगी, खफा जरूर होगी।
जिस मुन्ने कां मां ने बोलना सिखाया था,
वह मुन्ना बडा होकर उन्हें मौन रखना सिखाए, तो कैसे चलेगा।
पत्नी पंसद से मिलती है, लेकिन मां पुण्य से मिलती है,
पसंद से मिलने वाली के लिए पुण्य से मिलने वाली को मत ठुकरा देना।

पेट में 5 बेटे जिसे भारी नही लगे थे,
वो मां बेटों के पांच फलेटों में भारी लग रही है।
तो लोग कैसे कहेंगे कि यह श्रवण का देश है,
जिस मां ने तुझे मुंह का कौर खिलाकर बड़ा किया,
तू बुढ़ापे में उस मां का कौर मत छीनना।
जैसी करनी वैसी भरनी, यह न्याय मत भूलना,
संतान से सेवा चाहो तो संतान बनकर सेवा करना।

कर्तव्य सूत्र

कुल समाज, देश एवं पद के अनुसार योग्य क्रियाओं को कर्तव्य कहते है। इसके अष्टक सूत्र निम्न प्रकार हैंः-

1 माता पिता एवं अभिभावकों का कर्तव्य है कि अबोध बालक-बालिकाओं को कुलाचार-धर्माचार के साथ ही नैतिक, सामाजिक, व्यवहार की बातें एवं क्रियायें सिखायें तथा विसंगतियों से बचायें।

2 बालकों का कर्त्तव्य है कि अपने अभिभावकों के निर्देशानुसार कार्य करें।

3 विद्यार्थियों का कर्तव्य है कि वह अपना अधिक समय ज्ञानार्जन एवं अपनी योग्यता के विकास में व्यतीत करें। लडाई-झगडा तथा खोटी संगति में समय न गंवायें।

4 युवावर्ग का कर्त्तव्य है कि वह अनुभवी अभिभावकों, विषय विशेषज्ञों के मार्ग-निर्देशन में कार्य करें तथा त्रुटियों को विवके से छुडाने का प्रयत्न करें।

5 अभिभावक, माता-पिता, समाज नेता तथा वयोवृद्धों का कर्तव्य है कि नयी पिढी के प्रति वात्सल्य प्रेम रखते हुये उन्हें मार्गदर्शन करें तथा त्रुटियों को विवके से छुड़ाने का प्रत्यन करें।

6 सभी स्याद्वादी भाई बहिनों का कर्तव्य है कि सम्यक् ज्ञान-प्रसार एवं धर्म-प्रभावना के कार्यों में विशेष उत्साह से भाग लेते हुये परोपकार तथा असहायों की सहायता करें।

7 अपने जीवनोत्थान, मार्ग-दर्शन एवं प्रायश्चित के लिये एक धर्म गुरु की विशेष आवश्यकता है, अतः श्रावकोंचित दीक्षा (नियम व्रत) ग्रहण कर एक विशेष गुरु बना लें, सामान्यतः समस्त साधु-सन्तों की भक्ति, वैयावृत्ति करें तथा आहार-विहार प्रवचन आदि में भी भाग लें।

8 पारिवारिक एवं सामाजिक समस्त कर्ा अपना कर्तव्य समझकर करना चाहिये, पर का कर्त्ता बनकर नहीं, क्योंकि यथार्थ में आप अपने योग एवं उपयोग तथा आध्यात्मिक विकास के ही कर्त्ता और आत्मानुभूति के भोक्ता हैं।

चिंतनीय विष्य.......

दो दशक पूर्व भारतीय परिवार का नाम आते ही जहन में जो तस्वीर उभरती उसमें वृद्ध दादा-दादी, बां-बाप, चाचा-चाची व बच्चों वगैरह से भरा-पूरा घर होता था। उस समय घर यदि छोटे भी होते थे तो उनके दिलों में इतनी जगह होती थी जिसमें सारा परिवार भी समा सकता था। ऐसी धारणा थी बड़े-बूढ़ों के आशीर्वाद बिना कोई काम सफल नहीं हो सकते। मां-बाप को भगवान के तुल्य मानते थे। मर्यादा पुरुषोत्तम राम, श्रवणकुमार आदि के उदाहरण हमारे सामने हैं। माता-पिता का आदेश उनके प्रति अपने दायित्व के पालन के लिए इन इतिहास पुरुषों की सुविधा को गौण कर वह कार्य किया, जिसे इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखा गया एवं युगों-युगोंतक यह आदर्श दुनिया को संदेश देता रहेगा।

आज वृद्धों को दरकिनार करने की भावना बढ़ती जा रही है। पाश्चात्य संस्कृति ने पूरी दुनिया को अपने रंग में रंग लिया है। हमारे देश की गौरवशाली प्राचीन सभ्यता, संस्कृति व संस्कार भी इससे अछूते नहीं रहे। जिस सभ्ता पर हम गर्व महसूस करते थे, आज वही सभ्यता हमें पिछड़ी हुई प्रतीत होने लगी है। आधुनिकता की अंधी दौड़ में हमारे संयुक्त परिवार बिखरते जा रहे हैं। परिवार के नाम पर केवल पति-पत्नी व बच्चे रह गए हैं। मुझे एक घटना याद है-एक बार एक भाई नवविवाहित पुत्र को लेकर आचार्य श्री महाप्रज्ञ के दर्शनार्थ गया। गुरुदेव ने युवक से पूछा-परिवार के साथ आए हो? युवक ने उत्तर दिया-अभी तो विवाह हुआ है परिवार तो अभी बनाना है। मैं सुनकर स्तब्ध रह गई। तभी गुरुदेव ने कहा जिन मां-बा पके साथ तुम आज तक रहते आए क्या वह तुम्हारा परिवार नहीं है? उस युवक की बात ने सोचने पर मजबूर कर दिया। कैसी विडंबना है जिन मां-बाप ने अपने जीवन का अमूल्य समय अपने बच्चो की जिंदगी को बनाने संवारने में लगा दिया आज वही माता पिता तुम्हारे परिवार में आदर एवं स्नेह पाने के लिए तरसते रहते हैं। आज की युवा पीढ़ी अपने बुजुर्गों को न घर मे जगह दे पा रही है न दिलों में। क्यों आज माता-पिता युवा पीढ़ी पर बोझ बनने लगे हैं? यह एक चिंतनीय विष्य है।

धर्म हृदय का रूपान्तरण हैं बाह्य आचरण का परिर्वतन नही

दिगम्बर जैन मुनि सौरभसागर जी

धर्म हृदय का रूपान्तरण है, मात्र बाह्य आचरण का परिवर्तन नहीं। धर्म आत्मा का जागरण है, शरीर की क्रिया नहीं। लोहे और चुंबा में एक रंग रूपता होने के उपरान्त भी लोहे में चुम्बकत्व के गुण नहीं होते। उसी प्रकार धर्म और व्यवहारिक आचरण में एक रूप होने के उपरांत भी बाह्य क्रिया काण्ड से परिवर्तन नहीं होता। भीतर से चुम्बकत्व अर्थात् धर्म का जागरण होना अनिवार्य है। हृदय का धर्म सद्-आचरण को जन्म देता है और आचरण धर्मभाव को परिपुष्ट करता है। उक्त विचार वमुनि श्री सौरभ सागरजी महाराज ने व्यक्त किये।

उन्होनें कहा-धर्म अभिव्यक्ति नहीं अनुभूति है। धर्म वाणी का विलास नहीं, जीवन का निचोड़ है। धर्म वाणी का विलास नहीं, जीवन का निचोड़ है। धर्म व्याख्या नहीं, व्याप्ति है। धर्म परिभाषा नहीं, प्रयोग है। धर्म दर्शन की नहीं, आत्म दर्शन की वस्तु है। धर्म परिधि का अभिनय नहीं, केन्द्र का श्रम है। धर्म अपनत्व का आचरण है। धर्म, स्वयं का स्वयं से परिचय है। धर्म प्राण है। धर्म अहिंसा, संयम, तप है। धर्महीन जीवन बकरी के गले में लगे धन के समान अकार्यकारी है।

उन्होंने कहा - वस्तु का स्वभाव ही धर्म है। अग्नि जब तक अपने स्वभाव में है तब तक कोई स्पर्श नहीं कर पाता। स्वभाव से च्युत होती हैं तो पैरों तले रौंद दी जाती हैं। उसी प्रकार जब तक कर्म उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकता। जब मनुष्य में विभाव रूप परिणत हो जाता है, तब कर्म उसे पैरों तले रौंध डालते हैं। धर्म के अभाव में मनुष्य पशु के समान हो जाता है, धर्म प्रकट होने के उपरान्त व्यक्ति अपनी आत्मा में प्रवेश करने लगता है और सम्यक् दर्शन की भूमिका बन जाती है। सम्यक् दर्शन श्रद्धा की गहराई में पहुँचने के उपरान्त ही प्राप्त होता है।

उन्होंने कहा - सम्यक् दर्शन की प्राप्ति संसार क्षय की सूचना देती है, आत्मा का ज्ञान कराती है। सम्यक् दर्शन प्राप्त करने के अधिकारी सभी भव्य संज्ञी पंचेद्रि जीव हो सकते हैं। आत्मा की अनुभूति करने के लिये इंद्रियों को जीतने वाले परमात्मा के द्वारा कहे गये धर्म के अनुसार चलना आवश्यक हैा जिस प्रकार जल से स्नान करने से

शरीर में पवित्रता आती है, उसी प्रकार अहिंसा, संयम, तप रूपी धर्म में स्नान करने से आत्मा में पवित्रता आती है। आत्मा के उपययोग की धारा को परमात्मा की तरफ मोड़ने के लिये सांसारिकता से मुख मोड़ना चाहिये।

अन्त में उन्होंने कहा-जिसकी अत्मा में धर्म प्रकट होता है, उसके व्यवहार में पवित्रता विचारों में सरलता, स्वभाव में विनम्रता, हृदय में उदारता जैसे गुणों का आगमन होता है। दर्पण के प्रतिबिम्ब को पकड़ने से बिम्ब नहीं पकड़ में आता है। स्वयं को पकड़ लेने से बिम्ब स्वतः ही पकड़ में आ जाता है उसी प्रकार ग्रंथों को पकडने से धर्म पकड़ मे नहीं आता स्वभाव आचण को पकडने से धर्म पकड़ अपने आप पकड़ में आ जाता है। अतः आप आचरण को पकड़े-आत्मोत्थान करें।

मन की सुंदरता

-उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी महाराज

इस संसार में भ्रमण करता हुआ जीव चारों गतियों के दुःखों को सहन कर रहा है। संसार भ्रमण से छुटकारा पाने हेतु आत्मतत्व को समझना होगा। दृष्टि को बदलना होगा, बाहर की ओर जाती हुई दृष्टि को अंदर की ओर करना होगा।

वह अन्न किसी काम का नहीं है अगर वह क्षुधा का प्रतिकार न कर सके। वह मन किसी काम का नहीं जिस में सुंदर विचार न हो। आज व्यक्ति मात्र स्वाद के वशीभूत होता हुआ न भक्ष्य देखता है न अभक्ष्य, न रात देखता है न दिन। पहले स्वास्थ्य स्वाद का ध्यान रखते हुए भोजन करते हैं। परिणामस्वरूप आज स्वास्थ्य गिरता जा रहा है। जिस चाय को आप सबसे अधिक पसंद करते हैं उस चाय में दस प्रकार के विष रहते हैं ऐसा आज के वैज्ञानिकों तथा डॉक्टरों ने सिद्ध कर दिया है। अतः जीवन को अगर स्वस्थ्य, प्रसन्न रखना हो तो ऐसे पदार्थों का उपयोग न करें जो क्षुधा का प्रतिकार न कर सके। शरीर को अगर स्वस्थ रखना है तो सात्विक भोजन करें मोटा खाएँ, मोटा पहनें।

आज मानव के मनों में कभी अच्छे तो कभी बुरे विचार आते हैं किसी के प्रति कभी आप सद्भावों से भर जाते हैं। वह मन किसी काम का नहीं अगर वह सुंदर विचारों से भरा न हो। आचार्य कहते हैं कि मन की प्रत्येक समय निगरानी करो, मन में बुरे विचारों का समावेश न हो पाए, इसका ध्यान रखना चाहिए। कौआ को चांडाल कहा गया है क्रोध करते हुए साधु को चांडाल कहा गया है, ऐसा नीतिकारों ने कहा है। जिस धन से शांति का संचार न हो उस धन से क्या लाभ? आज धन के खातिर

इंसान शैतान बनता जा रहा है, भाई-भाई के खून का प्यासा होता जा रहा है। पिता पुत्र को नहीं देख पाता पुत्र पिता को नहीं देख पाता। रात-दिन हाय पैसा तथा हैलो की जिंदगी होती जा रही है, जो धन-शांति का संचार कराए स्व पर उपकार करे तभी वह धन कार्यकारी है। अतः धन के द्वारा किसी की सेवा कर सको, दान कर सको, किसी की पीडा को दूर कर सको तो वह धन आपका कार्यकारी है अन्यथा नहीं।

जिंदगी का आभूषण सौंदर्य नहीं अपितु सदाचार, परोपकार आदि भावनाएँ हैं। साथ ही संघर्ष को जीवन का आभूष्ण बताते हुए कहा कि जीवन में जितना अधिक संघर्ष सहन करता है उता ही अधिक उसका जीवन महान् बनता है। स्वर्ण अग्नि में जितना तपता है उतना ही महत्व उसका बढ़ जाता है। संस्कारित सोना ही आपके शरीर की शोभा बढ़ाता है। नन्हें-मुन्ने बच्चे संस्कारों से ही राम-सीता, महावीर बनकर आदर्श स्थापित कर सकते हैं। संसार में सभी की भावनाएँ एक सी नहीं होतीं। कौरवों की भावना थी कि मेरा तो मेरा है ही पर तेरा भी मेरा है। राम की भावना थी कि तेरा सो तेरा है ही, मेरा भी तेरा है और महावीर की भावना थी कि न तेरा है न मेरा है चिड़िया रैन बसेरा है। महावीर की भावना वाले व्यक्ति इस संसार में बहुत विरले हैं। राम की भावना वाले भी कम है। पांडवों की भावना वाले अधिक हैं और कौरवों की भावना वाले सबसे अधिक हैं। इसलिए आज व्यक्ति की इच्छाएँ असीमित होती जा रही हैं दूसरों का धन पाने के लिए आकृष्ट रहता है भाई-भाई के खून का प्यासा हो जाता है। पिता-पुत्र को पुत्र-पिता को मार देता है ऐसे पैसों से ज्ञानी व्यक्ति मोह ममता नहीं करते हुए तीसरे चौथे प्रकार की भावना भाते हैं यानी राम और महावीर की भावना को अपने जीवन में महत्व देते हैं।

असफलता का एक कारण : उत्साह की कमी

योग्यता होने पर भी सफलता न मिलने का कारण क्या हो सकता है? यह प्रश्न-लोक सेवा आयोग के एक भूतपूर्व सदस्य से पूछा गया तो उन्होंने तत्काल उत्तर दिया था, 'उत्साह की कमी'। कम योग्यता वाले भी यदि उत्साही है और अपने उत्साह के प्रदर्शन की कला जानते है तो जीवन में वे सफलता की सीढ़ियाँ चढ़ते जाते हैं, जबकि विशेषज्ञ भी उत्साह की कमी के कारण पीछे रह जाते हैं। ऐसे असफल व्यक्ति भाग्य को कोसते हैं या फिर दूसरों में अनावश्यक दोष ढूँढते हैं। वे अनैतिकता का ढिंढोरा पीटते हुए कहते हैः समाज में अनैतिकता बढ रही हैः बड़े अधिकारी भी अनैतिक होते जा रहे हैं, पदो ंके लिए सुयोग्य और अपने विषय के विशेषज्ञ का चुनाव नहीं हो रहा

है। ऐसे लोग यह नहीं जानते कि प्राणहीन विशेषज्ञता या कोरी योग्यता सफलता के लिए पर्याप्त नहीं है।

इतिहास के पन्नों पर ऐसी घटनाएँ लिखी हुई हैं जहाँ सफलता के सूत्र उत्साही प्रवृत्ति वाले व्यक्तियों के गुणगान से बने हैं। कठिन से कठिन काम उत्साही प्रवृत्ति वालों ने करके दिखाया है।

उत्साह किसे कहा जाए? जब यह सवाल उनसे पूछा तो बोले, 'कम में सच्ची दिलचस्पी। काम टालने वाले, बेमन से काम करने वाले और काम को बोझ समझने वाले लोग उत्साहहीन व्यक्तियों की श्रेणी में आते हैं। दूसरी और जो भी काम आपको मिले, या जो भी काम आपको मिले, या जो भी काम आप स्वीकार कर लें उसे इस तरह अंजाम दें कि न केवल आपको सन्तोष मिले बल्कि समाने वाले पर भी प्रभाव पड़े कि आपने यह काम रुचि के साथ किया है। मोटे तौर पर यही उत्साह है।

एक पढे-लिखे संन्यासी अपने भक्तों को बता रहे थे, 'ईश्वर की प्रार्थना भी यदि आप टालू रूप में करते हैं तो उसका फल तो नहीं ही मिलता; आपका समय भी बर्बाद होता है और आप अपनी ही नजरों में बेईमान बनते हैं। जैसी रुचि वैसा फल। रुचि और लगन से उत्साह का जन्म होता है। उत्साह से भीतर छिपी हुई शक्तियाँ प्राणवान् हो उठती है। उत्साह जीवन का सहस अंग बन जाता है तो हर काम में मन लगने लगता है। हम अपने आपको तो धोखा दे सकते हैं, भूल में रह सकते हैं लेकिन ईश्वर को नहीं। इसलिए हर काम को रुचि से करो। चाहे वो फिर काम-धंधा हो या नौकरी या फिर ईश्वर का स्मरण।'

आज एक शब्द बार-बार सुनाई देता है, 'बोर'। कितने प्रयोग हो रहे हैं इस शब्द के। बच्चा, जवान और बूढ़ा, शहर का या गाँव का हर व्यक्ति बात-बात में कहता है, बोर हो रहे हैं।' बोर मत करो।' तुम बहुत बोर हो।' बोरियत संक्रामक रोक की तरह फैल गयी है। इस एक 'बोर' रोग ने निराश को जन्म दिया है, उत्साह के सामने माइनस का निशान लगा दिया है। सारी की सारी उपलब्धियाँ व्यर्थ मालूम होने लगी ह। क्योंकि मन में हमनें इस एक शब्द को गहरे तक बैठ जाने दिया है। उत्साह बाहर रह गया हैं। घर में चोर घुस जाने पर जो स्थिति होती है, वही हमारे मन की स्थिति होती जा रही है।

मनोविज्ञानी बताते हैं कि इस चोर को बाहर निकालने का एक ही उपाय है, और वो है उत्साह से दोस्ती करना। उजाले के आते ही अंधेरा भाग जाता है, वैसे ही उत्साह के आते ही निराशा दूर हो जाती है, बुरा पहलू दिखना बन्द हो जाता है। हर

काम में मन लगने लगता है। बोरियत मन का मैल है, इसे उत्साह के साबुन से धो डालिये। अपनी योग्यता और क्षमता पर बोरियत की जंग मत लगने दीजिए। मन को तैयार कीजिए और कुछ ही दिनो में आप देखेंगे कि बोरियत की जो सलें पड़ गई थीं, अब वे उत्साह की इस्त्री से दूर हो गई हैं और मन का कपड़ा फिर से चमकदार हो गया है, योग्यता में चार चाँद लग गये हैं, सफलताएँ मिलने लगी हैं। योग्यता में किसी चीज की कमी भी होती है तो उत्साह उस कमी को पूरा कर देता है। एक महान् व्यवसायी का कहना है, मैं व्सावसायिक गुणवत्ता से भी अधिक उत्साह को महत्त्व देता हूँ।

एक सूक्ति है; उत्साह शक्ति है। उत्साह से कार्रवाई शुरू होती है तो उसका परिणाम भी श्रेष्ठ होता है। परिणाम आत्मसन्तोष देता है और आत्मसन्तोष से उत्साह। इस तरह यह चक्र चलता रहता है।

प्रोफेसर लेविस टेरमेन ने लिखा है; कामचलाऊ, चातुर्य और ऊँची किस्म का उत्साह काम में सफलता दिलाता हैं, जबकि ऊँची किस्म के चातुर्य और कामचलाऊ उत्साह से सफलता मिले यह जरूरी नहीं।

ज़िन्दगी संघर्षों से भरी हुई है। हर दिन एक नई चुनौती सामने होती है। हर व्यक्ति जीतने की आशा करता है और उसके लिए प्रयास भी। फिर हम जीतने के लिए उत्साह के साथ क्यों न करें?

जीवन क्रांति का सूत्र : मृत्यु-बोध

-मुनि श्री तरुणसागरजी महाराज

एक बात बिल्कुल सच मानिएँ जिंदगी में मृत्यु से ज्यादा सुनिश्चित है। जीवन मिला है तो जीवन मैं धन मिले, न मिले कोई जरूरी नहीं है लेकिन मृत्यु मिलेगी यह निश्चित है। जीवन में पद, पैसा, प्रतिष्ठा मिले कोई जरुरी नहीं लेकिन मृत्यु अवश्य मिलती है। आदमी पैदा हुआ, पढ़-लिख पाये; न पाये कोई जरुरी नहीं लेकिन मृत्यु जरुर पायेगा। जब मृत्यु निश्चित है तो उससे भय खाने की जरूरत नहीं है। मृत्यु अमृत है उससे ही जीवन का प्रादुर्भाव होता है। मृत्यु एक मंदिर है जिसमें जीवन का देवता विराजित है।

ओशो ने कहा है : मृत्यु जीवन का सबसे बड़ा शास्त्र है; इसे पढे बगैर जीवन मुक्ति संभव नहीं। मैं भी कहूँगा जीवन में एक ही शास्त्र पढने जैसा है और वह है मृत्यु-शास्त्र पढ़ डालो, पर जीवन का सत्य समझ में आ ही जाये इसकी कोई गारंटी नही हैं। गीता पढ़ लो, कुरान पढ़ लो, वेद पढ़ लो, पुराण पढ़ लो, बाईबिल पढ़ लो,

जिनसूत्र पढ़ लो पर जीवन का यथार्थ, जीवन का सत्य समझ में आ जाये ऐसा कोई जरुरी नहीं है लेकिन मृत्यु शास्त्र पढ़ लेने के बाद जीवन का शास्त्र आपने-आप समझ में आ जाता है। मृत्यु का स्वाध्याय जिंदगी का असली स्वाध्याय है। हजार शास्त्र पढ़ लेने के बाद दुनिया के सारे शास्त्रों के रहस्य स्वतः ही समझ में आ जाया करते हैं इसलिए मृत्यु को भुलाकर नहीं; अपितु लड़कर जियें। मृत्यु को बिसारकर नहीं अपितु स्वीकार कर जियें। मृत्यु से डरकर नहीं अपितु लड़कर जियें। मृत्यु को बिसारकर नहीं अपितु स्वीकार कर जियें। मृत्यु से डरकर नहीं अपितु लड़कर जियें। मृत्यु को अपनी छोटी बहिन मानकर जियें और यदि तुमने उसे छोटी बहन! मना तो तय है कि वह रक्षाबंधन पर तुम्हारी कलाई पर राखी बांधेगी।

जन्म मात्र दुर्घटना नहीं, वह तो जीवन का ही एक अंग है। भगवान् महावीर स्वामी कहते हैं जिस तरह से जन्म उसव है उसी तरह मृत्यु को भी महोत्सव का रूप दिया जा सकता है। जन्म है तो मृत्यु भी है मौत भी है। शुरुआत है तो अंत भी है। दरअसल जिंदगी के दो छोर हैं, एक छोर है जन्म तो दूसरा छोर है मृत्यु। जन्म और मृत्यु इन दो किनारों के बीच जिंदगी का जल बहा करता है। मृत्यु क्या है? इसको समझें, इससे पहले यह समझ लें कि जिंदगी क्या है? क्योंकि दुनिया में बहुतेरे ऐसे लोग भी है जो जिंदा हैं लेकिन उन्हें नहीं पता कि वे क्यों जिंदा हैं? जो जी रहे हैं लेकिन उनके जीने का कोई उद्देदश्य नहीं है।

मैं कोटा में था। आनंद-यात्रा कार्यक्रम में मैंने एक प्रश्न पछा कि तुम क्यों जी रहे हो? इसके उत्तर में कई लोगों ने अपने-अपने विचार प्रकट किये। किसी ने कुछ कहा लेकिन एक युवक ने जो कहा; वह काफी सच्चाई लिये हुय था। जब मैंने पूछा तुम क्यों जी रहे हो तो उस युवक का जवाब थाः मैं इसलिये जी रहा हूँ क्योंकि मैं सुसाइट नहीं कर सकता क्योंकि मैं आतमहत्या नहीं कर सकता। मैं समझता हूँ आज के 85 फीसदी लोग ऐसे है जिन्हें जीना पड़ रहा है; जिनके जीने में कोई रस नहीं, कोई उत्सव नहीं, कोई मृत्यु नहीं, कोई उत्सुकता और उमंग नहीं। पर ध्यान रखें असका नाम जिंदगी नहीं है। एक आदमी अस्पताल में पडा है और घसीट-घसीट कर जीता है तो वह घसीट-घसीट कर जीता नहीं हैं, अपितु घसीट-घसीट का मरता है। अस्पताल में जाकर देखना वहां कई लोग तुम्हें टंगे मिलेंगे। किसी की टांगें बंधी हैं, किसी के हाथ बंधे हैं, किसी को ऑक्सीजन दी जा रही है, किसी को ग्लूकोज दिया जा रहा है, किसी को नकली सुअर का हृदय प्रत्यारोपित किया जा रहा है, किसी को नली से भोजन दिया जा रहा है-यह भी कोई जिंदगी है? यह तो गंदगी है।

मेघ-महिमा

-श्री एलाचार्य तिरुवल्लुवरजी महाराज

समय पर न चूकने वाली मेघवर्षा से ही धरती अपने को धारण किये हुए है, और इसीलिए लोग उसे अमृत कहते हैं।

जितने भी स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ है, वे सब वर्षा के ही द्वारा मनुष्य को प्राप्त होते हैं, और जल स्वयं ही भोजन का एक मुख्य अंग है।

यदि पानी न बरसे तो सारी पृथ्वी पर अकाल का प्रकोप छा जाये, यद्यपि वह चारों ओर समुद्र से घिरी हुई है।

यदि स्वर्ग के झरने सूख जावें, तो किसान लोग हल जोतना ही छोड़ देंगे।

वर्षा ही नष्ट करती है और फिर वह वर्षा ही है, जो नष्ट हुए लोगों को फिर से हरा भरा कर देती है।

यदि आकाश से पानी की बौछारें बाना बन्द हो जाएँ, तो घास का उगना तक बन्द हो जाएगा।

स्वयं शक्तिशाली समुद्र में ही कुत्सित वीभत्सता का दारुण प्रकोप हो उठे, यदि आकाश उसके जल को पान करना और फिर उसे वापिस देना अस्वीकार कर दे।

यदि स्वर्ग का जल सूख जाये, तो पृथ्वी पर न यज्ञ-याग होंगे और न भोज ही दिये जाएँगे।

यदि ऊपर से जल धारायें आना बन्द हो जाएँ, तो फिर इस पृथ्वी पर न कहीं दान रहे, न कहीं तप।

पानी के बिना संसार में कोई काम नहीं चल सकता, इसलिये सदाचार भी अनततः वर्षा पर ही आश्रित है।

दोपहर की झपकी से बढती है याददाश्त

दोपहर की झपकी को भले ही अब तक रात्रि निद्रा से जोड़ कर देखा जाता रहा है लेकिन अब इस बारे में एक बार फिर से सोचने की जरूरत है।

हॉवर्ड मेडिकल स्कूल के शोधकर्ताओं का कहना है कि दोपहर को ली गई 45 मिनट की झपकी से रात की नींद खराब नहीं होती, बल्कि इससे याददाश्त भी बढ़ जाती है।

प्रमुख शोधकर्ताओं मैथ्यू ए टकर और उनके दल ने 23 साल की औसत उम्र के स्त्री-पुरुषों पर अध्ययन के बाद यह जानकारी दी है। स्लीप में प्रकाशित शोध रिपोर्ट के

मुताबिक, रात को भरपूर नींद के बावजूद मनुष्य का दिमाग दिन में जागृत अवस्था में संग्रहित की गई सभी सूचनाओं का विश्लेषण नहीं करता।

वह केवल उनहीं सूचनाओं का विश्लेषण करता है, जिन्हें हम मन लगाकर सीखते हैं दोपहर की झपकी में बाकी की सूचनाओं का विश्लेषण हो जाता है।

जीवन के कुछ संदेश

भविष्य कभी निर्धारित नहीं होता, निर्धारित केवल वर्तमान है। वर्तमान को जीया जा सकता है, अतीत को जाना जा सकता है और भविष्य तो आपके वर्तमा पुरूषार्थ का परिणाम होगा।

यदि हम धर्म को विष में प्रतिष्ठित और प्रचारित करना चाहते हैं तो ध्यान-योग को मील का पत्थर बनाए। मानसिक विकास के लिए स्वाध्याय, सेवा को सम्बल बनाया जाए। विकास के ये तीन चरण सारे संसार में प्रतिष्ठित होने चाहिए।

गिद्ध की तरह आदमी कितना भी ऊँचा उड़ जाये, लेकिन जब तक उसकी अन्तर्दृष्टि अनन्त नहीं होती, वह चाहे जैसा पद और प्रतिष्ठा पा ले, उसकी अन्तर्त्मा सदा गिरी हुई ही कहलाएगी।

जनता की भीड़ में अधिक हद तक विचारों की भीड़ ही है। जनता की भीड से बचने के लिए गुफा में एकान्तवास हो सकता है लेकिन विचारों की भीड़ से बचने के लिए दुनियाँ में कोई स्थान नहीं है।

जैसे सागर के किनारे खड़ा आदमी सागर की गिरती-उठती लहरों को देखता है और देखते-देखते अचानक तरंगे विलीन हो जाती हैं इसी तरह विचारों की तरंगे भी विलीन होती चली जाएगी; बशर्ते आदमी मन के प्रति सहज दृष्टा-भाव ले आए।

जब तक सख्त परेशानी में पड़ जाओ और हर एक बात तुम्हारे खिलाफ जाती हो यहाँ तक कि तुम्हें ऐसा लगे कि अब एक मिनट भी स्थिर नहीं रह सकोगे उस समय धीरज कभी न छोड़ो क्योंकि ठीक वही मुकाम और वक्त है कि तूफान पलटा खाता है।

हौंसला अगर बुलन्द है तो हर काम आसान होते हैं, नहीं तो मौत के पैगाम होते हैं। जो हौंसला हार जाते हैं ये जिन्दगी से हार जाते हैं, जिनका हौंसला बुलन्द होता है, वे बाजी मार जाते हैं।

गृहस्थ जीवन का आधार नारी

गृहिणी से गृह और गृहस्थी का आस्तित्व है। गृहिणी के अनेक रूप हैं जिनमें तीन रूप मुख्य हैं- 1. कुलवधू, 2. पत्नी, 3. माँ।

इन तीन भूमिकाओं से नारी गृहस्थ जीवन सुखी बनाती है। इन तीनों के रूपों में नारी सभी सदस्यों को सदाचारी बना सकती है। यदि वह नारी स्वयं सदाचारी हो।

स्त्री पर्याय का रजोधर्म के साथ अविनाभावी संबंध है। जिन्हें रजोधर्म होता है वे स्त्रियाँ और वे स्त्रियाँ जिन्हें रजोधर्म नहीं होता वे प्रायः वंध्या होती हैं। रजोधर्म प्रायः 12 वर्ष की अवस्था से 50 वर्ष तक रहता है। यह स्त्री शरीर की प्राकृतिक प्रक्रिया है। इस अवस्था में रजस्वला स्त्री को तीन दिन तक मौन पूर्वक एकांत में रहना चाहिए। बह्म का पूर्ण पालन करना चाहिए और किसी का स्पर्श नहीं करना चाहिए। रजस्वला स्त्री को गृह कार्य नहीं करना चाहिए। गाना, बजाना, नाचना, वस्त्रादि सीना, चाय-नाश्ता बनाना, हास्य करना, पीसना एवं जल छानना आदि ऐसे कार्य नहीं करने चाहिए।

षट्कर्मों में से भी कोई कार्य नहीं करना चाहिए तथा गुरुजनों एवं अन्य जनों से भी किसी प्रकार की बातचीत नहीं करनी चाहिए और श्रृंगार भी नहीं करना चाहिए। रजस्वला स्त्री को दर्पण में अपना मुख, रूप कदापि नहीं देखना चाहिए और न ही काम आदि वशीभूत होकर अन्य पुरुषों को अपना रूप दिखना चाहिए। कामादिक विकार सर्वदा नहीं करना चाहिए कलह, शोक, डाँटना, फटकारना, लड़ना, झगड़ना व विलास पूर्वक क्रंदन आदि भी नहीं करना चाहिए। इन तीन दिनों में पहने जाने वाले वस्त्र भी अलग होना चाहिए। सोने के लिए अलग चटाई होनी चाहिए। इन दिनों में दूध, दही, घी आदि रस छोड़कर नीरस भोजन करना चाहिए। पौष्टिक एवं गरिष्ठ भोजन नहीं करना चाहिए। रजस्वला स्त्री को पत्तल या पीतल के बर्तन में नीरस भोजन करना चाहिए और स्वस्थ चित्त से एकांत में रहना चाहिए। उसे मृत्यु, प्रसंग, विवाह पार्टी आदि में नहीं जाना चाहिए। श्रृंगार, मांग भरना, काजल लगाना, सुगंधित तेल, इत्र, उबटन, साबुन आदि नहीं लगाना चाहिए। उन्हें धर्म चिंतन पूर्वक तीन दिन व्यतीत करना चाहिए। ऋतुधर्म के बाद गर्भ धारण की योग्यता होती है। यदि इन तीनों दिनों के विपरीत आचरण के बाद गर्भ धारण करती है तो उसकी संतान अस्वस्थ, दुराचारी, कमजोरी आदि अनेक दूषणों से दूषित उत्पन्न होता है। यदि मासिक धर्म के समय वह रोती है तो गर्भ में आने वाला शिशु शोक करने वाला, नेत्र रोगी, अंधा, काना, ऐचातनी आँख वाला, मांजरी(बिल्ली के सदृश्य) आँखों वाला आदि अनेक रोगों वाला होता है। यदि नाखून काटती है तो शिशु के नाखून विकृत होते हैं। उबटन तेल लगाती है तो बालक को कुष्ट होता है। आँखों में काजल आदि लगाती है तो बालक मंद नेत्र ज्योति वाला होता है। उच्च स्वर से बोलने से प्रलापी, उन्मन्त, बुद्धिहीन और श्रृंगार आदि

करने से संतान व्यभिचारी होती है। इस तरह अपनी होने वाली संतान को आप स्वस्थ, योग्य एवं सदाचारी बनाना चाहते हैं तो ऋतुकाल में असंयमित आचार-विचार रखने होंगे। वर्तमान में आधुनिकता की चकाचौंध में हम अपने भविष्य के प्रति बहुत लापरवाह हैं। किंतु जब परिणाम सामने आते हैं तो दुःखी होना पड़ता है। ऋतुकाल को आज हमने शरीर की सामान्य क्रिया मान लिया है लेकिन पूर्वाचार्यों, आयुर्वेदाचार्यों एवं आगम ग्रंथों ने इसे विशेषता से ग्रहण किया है।

वैधक शास्त्र में मासिक धर्म के समय स्त्री को सुस्त, शांत भाव से रहने को कहा है। उसे किसी का मुँह भी नहीं देखना चाहिए क्योंकि विचारों, घटनाओं और दृश्यों का प्रभाव संतान पर पड़ता है। रजस्वला स्त्री के सामने भोजन करने से अपच हो जाता है। मासिक धर्म के समय भोजन करने से अपच हो जाता है। मासिक धर्म के समय स्त्रियों के अंगों में विपरीत परिणामों वाला विष होता है। अतः उसका बनाया हुआ भोजन शरीर के लिए हानिकारक होता है।

यूरोपीय वैज्ञानिक डॉ. एस.एल. शीकम ने सिद्ध किया है कि रजस्वला स्त्री के अंगों से निकलने वाले पसीने रोम छिद्रों एवं श्वसन वायु में विपरीत परिणाम वाला विष होता है।

वैज्ञानिक एस. आई. यासीक ने रजस्वला की त्वचा से मिनीकीलम नामक विष निकलना बताया है जिसका स्पर्श मनुष्य, पशु एवं जड़ पदार्थों को भी प्रभावित करता है।

डॉ. विशप के अनुसार रजस्वला के शरीर से मोनो-पॉक्सिन नाम का जहर उत्पन्न होता है।

रजस्वला स्त्री को जैन, वैदिक, ईसाई, यहूदी, फारसी एवं मुस्लिम धर्म ग्रंथों ने भी अशुद्ध माना है।

जो वास्तविकता का ध्यान न रखते हुए मासिक धर्म के समय गृह कार्य करती हैं उन्हें विचार करना चाहिए कि वह परिवारजन को जहर बाँट रही हैं। उसके द्वारा किया गया कार्य घातक है। अशुभ एवं अमंगल को लाने वाला है। धार्मिक एवं वैज्ञानिक दुष्प्रभावों को जानकर भी यदि श्रद्धान में दृढ़ता न आए तो व्यवहारिकता के प्रत्यक्ष प्रयोगों को देखकर अपना आचरण अवश्य बदल लेना चाहिए।

जैसे रजस्वला स्त्री के स्पर्श से फूल मुरझा जाते हैं। दृष्टि एवं आवाज से बड़ी, पापड़, आचार खराब हो जाते हैं शराब बेस्वाद हो जाती है। शक्कर के कारखाने में

रजस्वला स्त्री के जाने से शक्कर काली पड़ जाती है। इन सब बातों का गंभीरता से चिंतन कर अपनी चर्या में परिवर्तन अवश्य करें।

ऋतुकाल के स्वच्छंद आचरण से परिवार जनों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। जिससे बच्चे कमजोर और रोगी पैदा होते हैं। प्रसूति ठीक ढंग से नहीं हो पाती है। प्रसव में अनेक प्रकार की बाधाएँ हमारी लापरवाही का प्रतिफल है। आज परिवार में नए-नए असाध्य रोग अपना घर बनाते जा रहे हैं। बच्चों को योग्य आहार देकर भी हम तंदरुस्त नहीं बना पाते हैं। यह सब विकृतियाँ हमें प्रत्यक्ष देखने में आ रही हैं। इन सबका कारण ऋतुकाल की विकृत चर्या है यदि वह चर्या विशुद्ध और सकारात्मक हो तो अच्छे परिणाम आएँगें।

विदेश में शराब की कंपनी है वहाँ रजस्वला स्त्री को कार्य से छुट्टी दे दी जाती है क्योंकि उनके स्पर्श से वह शराब खराब हो जाती, सड़ जाती है।

मुझे माफ कर देना....

आचार्य श्री देवेन्द्र मुनिजी म.

बगदाद में एक महान सन्त हुए। जिनका नाम था–सर्रिसकीत। वे कई वर्षों से खुदा की इबादत कर रहे थे। वे जब भी खुदा की इबादत करते तब तक एक ही वाक्य सदैव बोलते थे। - हे खुदा! मुझे माफ करना।

कई लोगों को यह बात समझ नहीं आती थी कि–महात्मन् अपने कौन से गुनाह की माफी रोज खुदा से मांगते हैं?

एक बार उनके पास एक शिष्य आया, उसे भी यह बात समझ में नहीं आयी कि महात्माजी क्यों रोज खुदा से माफी मांगते हैं। उसने महात्मा जी से निवेदन किया और कहा कि–मैं आपसे एक रहस्य जानना चाहता हूँ और मैं आशा करता हूं कि आप मेरे रहस्य का सामाधान अवश्य करेंगे।

महात्मा ने कहा–कौन सा रहस्य जानना चाहते हो?

शिष्य बोला–आप पिछले वर्षों से प्रतिदिन खुदा की बन्दगी कर रहे हो। आप प्रतिदिन इबादत में हे खुदा! मुझे माफ करना। यह क्यों बोलते हो? आपने ऐसा कौन सा अपराध किया है जिसके लिए आप खुदा से क्षमा मांगते हो।

सर्रिसकीत ने उत्तर देते हुउ कहा-हे शिष्य! आज से कई वर्ष पहले इस नगर में एक बाजार में भंयकर आग लगी। जिस बाजार में आग लगी थी, उसमें अन्य लोगों की दुकानों के साथ मेरी भी दुकान थी। आग की खबर सुनते ही मैं घर से दुकान की

और दौड़ा। उसी समय रास्ते में मुझे एक व्यक्ति मिला, उसने मुझे कहा–तुम्हें दौड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है, तुम्हारी दुकान को छोड़कर शेष सभी दुकान जल गई है।

यह सुनकर मैं बोल उठा–हे खुदा! तुझे लाख-लाख धन्यवाद हैं। पर मुझे बाद में अपनी भूल ज्ञात हुई कि-मेरी अपनी सम्पत्ति का नाश हुआ, उसके लिए खुदा को मैंने धन्यवाद दिया। अपनी सम्पत्ति की रक्षा हुई, उसके लिए मैंने आनन्द व्यक्त किया, पर दूसरों की घोर उपेक्षा कर बड़ा अपराध किया है, जब मुझे इस बात का ज्ञान हुआ, उसी दिन से मैं खुदा से अपने अपराध की माफी मांगता हूँ। हे खुदा! मुझे माफ करना।

मद्यपानः आग के साथ खिलवाड़

उपाध्याय गुप्तिसागरजी

पुरातन में सुरा-पान करने की एक राजसी परंपरा थी; राजा लोग नित्य सुरापान करते थे। लेकिन हाँ, इतिहास इस बात का गवाह है कि सुरा मात्र तन्दुल/चावल का चूर्ण करके बनाई जाती थी, जो भारी, ग्राही-बल, दुग्ध, पुष्टि, मेद एवं कफ की वृद्धि करने वाली होती थी। सूजन, गुल्म, बवासीर, संग्रहणी तथा मूत्र कृच्छ का निवारण करती थी, लेकिन सम्प्रति-सुरा ने रोगों को नहीं; मस्तिष्क को नष्ट किया है/कर ही है। वह रोगों को पुष्टा ही नहीं अपितु नये नये रोगों को उत्पन्न भी कर रही है। मद्यपान आग के साथ खिलवाड़ जैसा है, क्योंकि आग सुलगने पर मात्र एक ही मकान जलाकर चुप नहीं बैठती, अपितु अपने आस-पास के तमाम मकानों को राख कर देती है। मदिाग्नि भी वही कुछ कर रही है। जिन दृष्टिकोणों से वह वर्जित थी, उन्हीं को आज ताड़ना दे रही है।

मद्य, मांस, मधु और नवनीत ये चार महा-विकृतियाँ हैं। मद्य अनेक पदार्थों को सड़ाकर तरल/रस के रुप में निर्मित की जाती है। इसे बहुत से रसज जीवों की योनि कहा जाता है। उसमें तद वर्ण, तज्जाति के जीवन जन्मते-मरते रहते हैं। मद्य की एक बिंदु में मद्य के रूप, रसधारक असंख्य जीव होते हैं। यदि वे संचार करें तो समस्त त्रैलोक्य रूप संसार पूरित कर देंगे, इसमें संदेह के कुहासे को कोई अवकाश नहीं। मद्यपान से असंख्य जीव एक काल-कवलित हो जाते हैं। यह हिंसा, अहिंसा की हिंसा कर देती है। हमारा ब्रह्मपद बुरी तरह घायल हो जाता है। ब्रह्मधात का पर्याय आत्मघात है। जौ आत्मघात जैसे घिनौने कृत्य से बचना चाहते हैं, उन्हें मद्यपान से बचना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य शर्त है।

दूसरी बात यह भी है कि शराब अभिमान, भय, ग्लानि, हास्य, अरति, शोक, काम और क्रोधादिक न जाने कितने वैकारिक भावों को जन्म देती है। जो कि हिंसा के नामान्तर हैं। वे मद्यपायी में मौजूद ही नहीं अपनी प्रत्यक्ष उपस्थिति देते हैं। उसके मस्तक पर दस्तक देते ही रहते हैं।

अहिंसा

अहिंसा सब धर्मों में श्रेष्ठ हैं। हिंसा के पीछे सब प्रकार के पाप लगे रहते हैं।

क्षुधाबाधितों के साथ अपनी रोटी बाँट कर खाना और हिंसा से दूर रहना, यह सब धर्म उपदेष्टाओं के समस्त उपदेशों में श्रेष्ठतम उपदेश है।

अहिंसा सब धर्मों में श्रेष्ठ धर्म है, सचाई की गणना उसके पश्चात् है।

सन्मार्ग कौन-सा है? यह वही मार्ग है जिसमें छोटे से छोटे जीव की रक्षा का पूरा ध्यान रक्खा जावे।

जिन लोगों ने इस पापमय सांसारिक जीवन को त्याग दिया है, उन सबमें मुख्य वह पुरुष है, जो हिंसा के पाप से डर कर अहिंसामार्ग का अनुसरण करता है।

धन्य है वह पुरुष, जिसने अहिंसाव्रत धारण किया है। मृत्यु जो सब जीवों को खा जाती है, उसके सुदिनों पर हमला नहीं करती।

भले ही तुम्हारे प्राण संकट में पड़ जावें, तब भी किसी की प्यारी जान मत लो।

जो लोग कहते हैं कि बलि देने से बहुत सारे वरदान मिलते हैं, परन्तु पवित्र हृदय वालों की दृष्टि में वे वरदान, जो हिंसा करने से मिलते हैं; जघन्य और घृणास्पद हैं।

जिन लोगों का जीवन हत्या पर निर्भर है, समझदार लोगों की दृष्टि में वे मृतकभोजी के समान हैं।

देखो, वह आदमी जिसका सड़ा हुआ शरीर पीवदार घावों से भरा हुआ है, वह पिछले भवों में रक्तपात बहाने वाला रहा होगा, ऐसा बुद्धिमान लोग कहते हैं।

सुख का मार्ग

विश्व का प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है। उसका प्रतिपल यही प्रत्यन रहता है कि किसी भी प्रकार दुःखों से छुटकारा मिले और सुख प्राप्त हो। फिर भी आज विश्व भर में सर्वत्र अशांति, आकुलता, मानसिक तनाव एवं हाहाकार दिखाई देता है। तनाव 20वीं सदी का सबसे बड़ा अभिशाप है। निरन्तर पुरुषार्थ करने पर भी जगत के समस्त बाह्य वैभव तथा भोग उपभोग की सामग्री के होते हुए भी आज प्रत्येक प्राणी भीतर में दुःखी हैं-बेचैन है-अशांत है। स्थिति यह है कि रोगी रोग से पीड़ित है, उसका मूल

कारण नहीं जानता, सच्चा उपाय नहीं जानता, दुःख दूर नहीं होता-तड़प और बढ़ जाती है-जैसे तैसे दुःखों को सहन करता है। इस तरह अनादिकाल से संसार रूपी दुःख सागर में इसका परिभ्रमण जारी है।

दुःख के कारणों का विश्लेषण करने पर निम्न बुनियादी एवं मौलिक भूलों का परिज्ञान आवश्यक होगा।

दुःखों के मूल कारण

शरीर में अहम् बुद्धि :-सबसे पहली भूल यह है कि यद्यपि यह स्वयं अनन्त गुण वाला चैतन्य तत्व-ज्ञान दर्शन स्वभावी आत्मा है-स्वयं सुख और शांति का भण्डार है तथापि इन्द्रियों के माध्यम से निरन्तर बाहर की ओर ही दृष्टि होने के कारण इसने मूर्तिक जड़ अचेतन शरीर को ही अपना स्वरूप माना और इसकी अहं बुद्धि शरीर में होने के कारण शरीर के संयोग रूप इन्द्रियाँ, मनुष्य पशु आदि पर्यायो तथा बाह्य में परिजन, मित्र, महल, मकान, पशु आदि पर्यायों में उलझकर अपने ज्ञान स्वभावी अनुभव से अनभिज्ञ रहता हुआ निरन्तर आकुलित हो रहा है। आत्मा और शरीर में भेद तो स्वयं सिद्ध है-आत्म ज्ञानदर्शन स्वभावी है और शरीर अचेतन जड़ पदार्थ है इस भेदज्ञान का अभाव होने के कारण इसने अपनी ओर न देखकर शरीर के स्तर पर ही सारी अनुभूति का गलत पुरुषार्थ किया। शरीर के साथ रोग, जन्म, जरा, मरण, भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी आदि अनेक समस्याएं जन्म लेती है। इनके शमन के लिए यह जीव नाना प्रकार की इच्छाएं तथा उनकी पूर्ति के प्रयत्न ने लगकर असफलता प्राप्त कर दुःखी ही होता है। शरीर के स्तर पर होने वाले पदार्थों के संयोग में अपमान माना-इनके सदभाव में अपने को सुखी तथा अभाव में दुःखी माना-संयोगी पदार्थों का मिलना- बिछुड़ना वास्तव में इसके आधीन है नहीं पर अपनी मिथ्या मान्यता के कारण अपने ज्ञान स्वभावी आत्मा को न पहचानने के कारण स्वयं ही बाहरी उलझन में पड़ा रहकर आकुलता का वेदन करता रहा है।

महावीर श्री के धर्मोपदेश का प्रभाव

भगवान महावीर स्वामी ने अपने हित-हित मयी दिव्योपदेश द्वारा उस समय के लोक में प्रचलित सभी तरह के अन्याय, अत्याचार, अनाचार, दुराचार, दुष्प्रथाएँ, दुराग्रह, एवं पोप-पन्थों के विरूद्ध सत्याग्रह किया और जन-साधारण को सन्मार्ग का सदुपदेश दिया। भगवान के उपदेश से प्रभावित होकर अनेक राजा-महाराजाओं ने अमीरों और गरीबों ने, विद्वानों और अल्पज्ञों ने उच्च और दलितों ने छूत और अछूतों ने, पशु और पक्षियों ने सभी ने पतित-पावन विश्व (जैन) धर्म धारण कर प्राप्त जीवन

को सफल बनाया। उस समय भगवान महावीर स्वामी द्वारा प्रचारित जैन-धर्म आज सरीखे तंग घेरे में बंद नहीं था,उसका दरवाजा तो सभी के लिए खुला था। इसीलिए उस समय इस धर्म ने सार्वभौमिकता प्राप्त कर ली थी।

लोकोपकारी भगवान महावीर ने अगणित प्राणियों को अज्ञा-नान्धकार से निकलकर यथार्थ वस्तु स्वरूप का ज्ञान कराया, मोह मिथ्यात्व और मूर्खता का आवरण हटाकर जीवो का सच्चा रास्ता सुझाया और प्रचुर मात्रा में प्रचलित लोक मूढताओं पाखण्डों-रूढियों और दुराग्रहों को हटाया, पतितों को पवित्र किया, अछूतों को छूत बनाकर गले लगाया, हिंसा को बन्द कराकर ''खुद जियो और दूसरों को जीने दो'' का सबक पढाया, कायरता को हटाकर जनता को स्वावलम्बी बनाया, वैमनस्यता को पछाड कर विश्व में भ्रातृत्व भाव को फैलाया। इस तरह भगवान महावीर स्वामी ने अपने सदुपयोगी संदेश द्वारा संसार को सुखी शाँत और पवित्र बनाया।

लगातार तीस वर्ष तक दिव्योपदेश देने के उपरान्त 72 वर्ष की आयु के अन्त समय स्वात्मस्थ हो गये और कार्तिक कृष्णा अमावस्या की पहली (चतुर्दशी के बाद की) रात्रि को स्वाति नक्षत्र में बिहार प्रान्तस्थ मल्लिवंशीय राजा हस्तिपाल की राजधानी मध्मा पावापुर से अवशिष्ट चार अधालिया कर्मों का विनाश कर मोक्ष-लक्ष्मी को वरण किया था। इस तरह भगवान महावीर स्वामी के 72 वर्षों में एक भी क्षण उनका ऐसा नहीं गया जिस क्षण में उनके द्वारा दूसरों का उपकार न हुआ हो। उनका जीवन वास्तव में आदर्श जीवन था।

कृतज्ञता

महावीर श्री ने संसार के प्रत्येक प्राणी के प्रति महान उपकार किया था, उनके अगणित उपकारों से जनता दबी जा रही थी इसलिए कृतज्ञतावश उस समय की जनता ने अपने उपकारी परमगुरु के मुक्ति लाभ की खुशी में दीप जलाकर अपनी प्रगाढ़ भक्ति का परिचय दिया था, तभी से दीपावली का पावन त्यौहार भारत में प्रचलित हुआ जो कि आज तक महावीरश्री के उपासकों द्वारा प्रतिवर्ष धूमधाम से मनाया जाता है।

महावीरश्री की स्मृति में वीर निर्वाणसंवत् भी आज तक प्रचलित है।

व्यसन के मायने

-उपाध्याय गुप्तिसागरजी महाराज

वह समाज और राष्ट्र सौभाग्यशाली माना जाता है जिसका नागरिक/युवा पीढ़ी व्यसन मुक्त है। तो आइए! पहले हम यह समझें कि वह व्यसन क्या है? जिससे हमें मुक्त होना है। 'यत पुंसः श्रेयसः व्यस्यति तद व्यसनम्! जे पुरुष को कल्याण-मार्ग से

भ्रष्ट कर दे वह है व्यसन। वह असत् प्रवृत्ति जो मानव को निरन्तर उत्तम से जघन्य की ओर ले जाती है।

पं. प्रवर धरसेन ने व्यसन शब्द के अशुभ, आसक्ति, अनिष्टफल, विपत्ति, विफल-उद्यम, कर्मफल, भाग्यवश, स्त्री और सम्यक-आचरण से गिरना आदि पर्याय नाम बतलाये हैं। व्यसन नाम संकट का भी है; उपर्युक्त शब्दों में व्यसन से तात्पर्य 'सुचरिताम्दंशे' अर्थात् सम्यक आचरण से गिरना। यों तो व्यसन का अर्थ अत्यासक्ति भी है, लेकिन देखिये! अत्यासक्तियाँ एक नहीं अनेक होती है, यतः किसी को पढ़ने की, किसी को श्रवण की, किसी को खाने की, तो किसी को अधिक बोलने की; किंतु प्रस्तुत प्रसंग में इन अत्यासक्तियाँ एक नहीं अनेक होती है, यतः किसी को पढ़ने की, किसी को श्रवण की, किसी को खाने की, तो किसी को अधिक बोलने की; किंतु प्रस्तुत प्रसंग में इन अत्यासक्ति रूप व्यसन से प्रयोजन नहीं हैं प्रयोजन हैं उससे, जो हजारों-हजार विपदाओं को आमंत्रण देता है। व्यसन के मायने वह प्रवृत्ति जो जिन्दगी का रस सोख लेती है। वह ऐसी अमरबेलि है जो जलाभाव में भी पनपती है और अपने आश्रय का करती है सर्व-विनाश। व्यसन जीवन के लिये अभिशाप है, जीवित व्यक्ति की मृत्यु है, और है मानव जीवन का काला पर्दा।

बर्बादी का साम्राज्य

जब आदमी खुद को लेकर अपने आप में व्यस्त हो जाता है, तब भाग्य विधाता भी शायद किसी आड़ में बैठकर कोई मंसूबा बांधता है। कब कितने प्रकार के कर्जों का पेचीदा हिसाब स्वयं के भाग्य विधाता के पक्के खाते में लिखा देता है, इसकी कोई इयत्ता नहीं। उसका भाग्य उसके जमा खर्च की तरह हर संख्या को देखकर उसके कारनामों का सूक्ष्मतम न्याय करता है। उसका भाग्य उसे बीच-बीच में सावधान करता है; किंतु व्यसनों में आपाद-कण्ठ आसक्त व्यसनासक्ति के मोटे चीर में अपना मुँह छिपाये व्यसनी उसकी चेतावनी नहीं सुन पाते और उतर जाते हैं बर्बादी के गहरे खड्डे में। व्यसन है आदत का बंधन, लत का दासत्व और बर्बादी का साम्राज्य।

सचमुच ही व्यसन का पथ चौड़ा है, उससे उसका द्वार और भी अधिक चौड़ा हैं यदि कोई अपनी बर्बादी चाहता है तो व्यसन नगर के सदर दरवाजों को ठेलने की जरूरत नहीं हैं वह तो रात्रि दिन खुला ही रहता है। इस ध्वस्तपुरी के सदर दरवाजे पर कोई दरबान नियुक्त नहीं रहता। जिसे मर्जी हो वह निर्विरोध प्रवेश ले अपनी पूरी जिन्दगी बर्बादी के हवाले कर सकता है। व्यसन, व्यक्ति का हाथ पकड गहन अंधकार में

खींच ले जाता है। जिसे चीर कर निकलना उसे संभव नहीं, क्योंकि उसके पैर दलदल में फँसते ही चले जाते हैं।

अंगूर की बेटीः परिमित आपदाओं की आमंत्रक

मादक द्रव्यों में चाय और तम्बाकू के पश्चात मदिरा का नाम आता है। तब आखिर यह मदिरा है क्या बला? जो आज इतनी सिर चढ़ी है। क्या यह कोई ईश्वरीय प्रसादी है? जो हर वर्ग/वय के लोगों को अपनी गिरफ्त में लिये हैं तो जानिये! मदिरा कोई ईश्वरीय प्रसादी वरदानी नहीं, बल्कि अभिशाप है। वह कोई जीवनी-संजीवनी नहीं, कोई विटामिन नहीं, कोई शक्तिप्रद पेय नहीं, न ही किसी रोग की औषधि है किन्तु यह एक ऐसा विष है, जो मौत का समय से पूर्व आमंत्रण देता है। मद्याशक्ति एक सर्वव्यापक व्याधि हैं मादकता का अज़गर अपनी कुण्डली में धार्मिक, शारीरिक, नैतिक, सामाजिक, मानसिक, आर्थिक भौतिक एवं राजनैतिक दृष्टिकोणों से प्राणी, वनस्पति और मानव जगत को जकड़ता चला जा रहा है; और बिलख-बिलख रो रही है मानवता....!

वंश-वृक्ष की जटिल जड़ों की तरह कभी न सुलझने वाली यह शराब सभी अनर्थों की जड़ है। इसका व्युत्पत्यर्थ; शराब अरबी भाषा का शब्द है, जिसका प्रयोग फारसी और उर्दू भाषा में भी किया जाता है। अरबी भाषा में 'शर' शब्द के बदी, बुराई, उपद्रव और फसाद आदि कई अर्थ हैं। अब शब्द फारसी भाषा का है। जिसका अर्थ संस्कृत का समकक्षी अप। आप शब्द जैसा है; अर्थात् पानी हैं इसे यूँ समझो, ऐसा पानी जो बदी, बुराई, झंगड़ा, फसाद पैदा करें। शराब की बोतल के मादक पानी ने मानव की मानवता का पानी उतार दिया है। संस्कृत में शराब को मद्य कहते है। जो 'मद' को उन्मत्त करने वाला है। इसे शराब, मद्य, मदप, मधु, सुरा, सोमरस, हालाहल, मैरेय, शीधु, कादम्बरी, इरा, प्रसन्ना, आसव, वारूणी इत्यादि उनके नामों से लोक में जाना जाता है।

चला गया जो संसार से वह पुनः लौटता नहीं...

चला गया जो संसार से वह पुनः लौटता नहीं।
विधि का यह विधान कभी बदलता नहीं।।
बह गई जो धार सागर में पुनः लौटती नहीं।
मनुष्य जन्म दुर्लभ है यह बार-बार मिलता नहीं।।
पहचान अपने जीवन को यह भोग विलास की वस्तु नहीं।
चला गया जो संसार से वह पुनः लौटता नहीं।।

पहचान अपने जीवन को यह व्यर्थ खोने का जीवन नहीं।
धर्म की कसौटी पर एक बार घिसकर देखों तो सही।।
हीरे और काँच में क्या फर्क है इसे जान तो सही।
वैराग के पथ पर एक बार चलकर देखो तो सही।।
राग और वैराग में क्या फर्क है इसे समझ तो सही।
चला गया संसार से वह पुनः लौटता नहीं।।

कुछ-कुछ अंश

मुनि विकर्ष सागरजी

अन्याय को मिटाने के लिए कृपया खुद अन्यायी मत बनिए।
अपरिग्रह का अनुयायी होना सामाजिक सेवा का ही चरण है।
बोध के अभाव में पत्थर पूजा जाता है, पुरुष दुत्कारा जाता है।
कुपात्रों का अभिनन्दन सुपात्रों का अपमान है।
अमृत पर विष प्रभावी नहीं होता।
जीवन का अर्थ जीवन के उपयोग में ही है।
अंधे को दीपक दिखाना, बहरे को संगीत सुनाने के समान है।
होने वाला होता रहेगा, तुम अलिप्त रहो।
अधूरा ज्ञान अज्ञान से अधिक खतरनाक है।
क्रोध में अपनी सुध-बुध खो बैठना अविवेक है।
हर अव्यवस्था के पीछे भी कोई गहरी व्यवस्था होती है।
जिसका मन अशांत है, उनके लिए राजमहल भी कारागार है।
यश, धन और काम-ये तीनों जीवन के अशुभ केन्द्र हैं।
अशुभ समय जितनी देर के लिए टले, उतना ही शुभ है।
असत्य अविश्वास की जहरीली जड़ है।
अपनी आत्मा की आवाज से बढ़कर कोई प्रेणा नहीं है।
आत्म-स्वीकृति में ही परमात्मा की पदचाप सुनाई दे जाती है।
क्रियाशील रहना हर व्यक्ति का आदर्श होना चाहिए।
सजग सहजता ही संबोधि की आधारशिला है।
आलस अमावस है, पुरुषार्थ पूनम है।
आवश्यकता पेट की तरह होती है, इच्छा पेटी की।
रेगिस्तान मे बादलों का छाना भी, उत्सव से कम नहीं है।

नारी : स्थान और कर्तव्य

स्माज की रचना में पुरुष और स्त्री दो समान अविभाज्य अंग हैं। पुरुष के बिना समाज गतिहीन है और स्त्री के बिना स्थितिहीन। पुरुष का कार्य ''पौरुष'' कहा जाता है और उदग्र पौरुष के लिए गतिमय होना आवश्यक है। प्रगति और आगे बढ़ने के उपायों की सर्जना पुरुष ही करता है। वह शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से सबल होता है, अतः पुरुषार्थों के सम्पादन में अग्रसर रह कर न्याय-व्यवस्था, शासन और प्रगति के बहुमुखी-बहुलक्ष्मी कार्यों में प्रसक्त रहता है। इस प्रकार वह गति का स्रष्टा है, उत्पादक है और उसकी मंजिल के पड़ाव सूर्य, चंद्र, ताराओं की सीमा को छूते रहते हैं।

स्त्रियां पुरुषों की अर्धांगिनी होकर भी स्थिति की प्रतीक्षा है। सनातन मार्ग से आने वाली संस्कृति की रक्षा में स्त्रियों का बहुत भारी सहयोग है। जिस प्रकार घर की देहली पर घरा हुआ दीपक बाहर और भीतर समान उजियाला करता है, उसी प्रकार पुरातन मर्यादाओं के खेमे में रहते हुए भी महिलाएं नित्य-बदलती स्थितियों के साथ समन्वय करने की सहज बुद्धि रखती हैं।

रथ का चक्र जब घूमता है तो उसमें दो क्रियाएं एक साथ होती रहती हैं-एक गति और दूसरी आगति। गति-क्रिया से चक्र आगे बढ़ता है और आगति क्रिया से वह अपनी कीली (केंद्र) से सम्बद्ध रहता है। कुम्भकार के चक्र पर यह बात अधिक सुगमता से समझ में आ सकती है। यदि घुमते हुए चक्र को नियन्त्रित करने वाली कीली न हो, उसकी केंद्र-सत्ता न हो तो वह चक्र अपने स्थान से च्युत होकर कहीं विशीर्ण हो जाएगा, टूट जाएगा। उंगली में किसी चक्र को लेकर घुमाइये और तीव्र गति से घूमते हुए उस चक्र(रिंग) में से अपनी उंगली निकाल लीजिए। अब देखिए वह चक्र गति से प्रेरित होकर आगे बढ़ेगा और कुछ दूरी पर घूमता हुआ गिर जाएगा। यदि आटा पीसने की चक्की में भी कीली न हो तो वह अपनी धुरी से हट जाएगी और कार्य नहीं कर सकेगी।

स्त्री का स्थान पुरुष की गति को नियन्त्रित करने में उस कीली के समान है जो अपनी स्थिति से उसे गतिमय रखती है और अन्धगति से उत्पन्न होने वाली दुर्घटनाओं से बचाती है, अतः स्थिति और गति के संयुक्त स्वभावों का मिथुनीभाव ही 'पुरुष और स्त्री' का दाम्पत्य है। यह ध्यान देने योग्य है कि गति से स्थिति सर्वथा विपरीत होती है। 'समान-शीलव्यसनेषु संख्यम्' जो लोग समान शील हों उनमें ही मित्रता स्थिर रहती है, नीति वाक्य मे विपरीत पुरुष और स्त्री सभी स्वभावों में शरीर-संस्थानों में

एक-दूसरे से नितान्त भिन्न होते हैं और भिन्नता की यह स्थिति ही उनमें अभिन्नता उत्पन्न करती है।